International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 213-215

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 213-215
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 09-03-2017
Accepted: 10-04-2017

सुशीला आर्या
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

Correspondence
सुशीला आर्या
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

ब्रह्म की प्राप्ति में साधनरूप व्याकरण की उपादेयता

सुशीला आर्या

प्रस्तावना
भर्तृहरि उपर्युक्त विषय के सम्बन्ध में कहते हैं कि-

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।
प्रथमं छन्दसामगं व्याहुर्व्याकरणं बुधाः।। वा. 1.11।।
प्राप्तरूपविभागायाः यो वाचः परमो रसः।
यत्तत्पुण्यतमं ज्योतिस्तस्य मार्गोऽयमांजसः।। वा. 1.12।।

इनमें से प्रथम श्लोक में व्याकरण को 'ज्ञान' और 'वेद' का प्रथम और प्रमुख अंग कहा गया है। किन्तु, अगले में उसे वाणी का परम रस अथवा उसकी परम ज्यासेति को पाने का आंजस मार्ग कहा गया है। आंजस का शब्दार्थ सर्वत्र लघुतम या ऋजुतम किया गया है। पतंजलि जिसे 'लघु' के रूप में व्याकरण का प्रयोजन मानते हैं, और स्वयं भर्तृहरि ने जिसके लिए 'व्याकरणं लघुरूपायः शब्दज्ञानं प्रति, अन्य उपाय एव न संभवति' कहा है, उसे ही यहां वे 'आंजस मार्ग' के रूप में कह रहे हैं। उनकी दृष्टि में व्याकरण शब्दज्ञान और वाणी के अमृतपान का सब से छोटा और सीधा मार्ग है।
परन्तु यहां 'आंजस' जिस रूप में आया है, उस से वह 'ज्योति' का विपरीत अर्थ प्रतीत होता है। सम्भव है कि शुद्ध शब्द 'आंजन' रहा हो। कुछ व्याख्याकार 'आंजस' का अर्थ भी अन्धकारमय करते हैं। इसका आधार वे भर्तृहरि की इस उक्ति में खोजते हैं।

प्रत्यस्तमितभेदाया यद्वाचो रूपमुत्तमम्।
यदस्मिन्नेव तमसि ज्योतिः विवर्त्तते।। वा. 1.18।।
तद् व्याकरणमागम्य परं ब्रह्माऽधिगम्यते।। वा. 1.22।।

यहां प्रथम श्लोक का 'शुद्धं ज्योतिः' अगले श्लोक में 'परं बह्म' बन गया है। प्रथम श्लोक में उसका अविर्भाव और विवर्त्त 'तमसि' (अन्धकार में) स्वीकार किया गया है, जब कि दूसरे में उस की अभिव्यक्ति का माध्यम 'व्याकरण' को स्वीकार किया गया है। 'आंजस मार्ग', 'तम' और 'व्याकरण' को सर्वत्र एक समान रूप में ही 'शुद्ध ज्योति' या 'परब्रह्म' के प्रकाशन का माध्यम स्वीकार किया गया है। सबसे छोटा पथ अन्धकारपूर्ण कैसे हो सकता है? पर, दूसरी ओर, 'मूर्त्ति व्यापार-दर्शन' में ही उलझता दीखता है। अतः वह भी 'वैकृत' ही है। उसे पार करके ही प्रकाश-रूप ब्रह्म के दर्शन होते हैं।
यह 'ब्रह्म' कौन है? व्याकरण के द्वारा यह कैसे उपलभ्य है? इन प्रश्नों का समाधान भर्तृहरि 'वाक्यपदीय' में वा. 1.1 से 1.22 तक इसी 'शब्द-ब्रह्म' की चर्चा करते हैं।
दूसरे शब्दों में व्याकरण शब्दब्रह्म को पाने का सरलतम और सीधा मार्ग है। वह स्वतः अन्धकारमय प्रतीत होकर भी हमें उस महाज्योति का साक्षात् कराता है।

उपलभ्य वह प्रकाश है, मार्ग वतो साधन या उपाया मात्र है। इसीलिए भर्तृहरि कहते हैं: अन्य उपाय एव न संभवति।

उपाय

परन्तु 'मार्ग' और 'उपाय' का क्या महत्त्व है? भर्तृहरि 'उपाय' की परिभाषा दो स्थान पर करते हैं। महाभाष्य की त्रिपदी टीका में वे कहते हैं: 'उपायो नाम कार्यनिवृत्ति प्रतिय: कारणानां विन्याविशेष:।' अर्थात्, कार्यसिद्धि के लिए कारणों का विशेष विन्या ही 'उपाय' कहलाता है। 'वाक्यपदीय' में वे कहते हैं: 'उपादायाऽपि ये हेयास्तानुपायान् प्रचक्षते।' अर्थात्, कार्य-सिद्धि हो जाने तक ही जिनकी महत्ता रहती है, पर उसके बाद जिनका ग्रहण अभीष्ट नहीं होता, उन्हें 'उपाय' कहते हैं। इसका अर्थ हुआ कि भर्तृहरि की दृष्टि में व्याकरण मार्ग या उपाय भर है। वह लक्ष्य और सिद्धि प्राप्त कराने का साधन भी है। वह स्वयं लक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता। लक्ष्य प्राप्ति होते ही वह महत्त्वहीन हो जाता है। इसीलिए उन्होंने कहा- 'एवं यदि शब्दा गौरि-त्येवमादय: पाणिनिप्रभृतिभि: सौरक्रीडावत् व्यवहारार्थेषूत्पादिता: स्युस्तत्रा-शिक्षित: पुरुष: कुशलान् प्रयोज्यत्वेन वैयाकरणनुपेयात्। न चोपंति।' [1] अर्थात् यदि शब्दों का निर्माण पाणिनि आदि वैयाकरणों ने किया हो, तो व्याकरण में अशिक्षित पुरुष को शब्द-प्रयोग के समय वैयाकरण के पास जाकर शब्द की याचना करनी पड़ेगी। पर ऐसा होता नहीं। व्याकरण भाषा-निर्माण या शब्द-निर्माण की प्रकिया को समझने-समझाने का उपाय अवश्य है, किन्तु 'भाषा-निर्माण की प्रक्रिया किन्हीं वैयाकरणों द्वारा सम्पन्न होती है' यह कहना अपनी अज्ञानता सूचित करना है।

इसीलिए भर्तृहरि ने 'व्याकरण' शब्द की सही व्याख्या करते हुए कहा था: आक्रियते इत्यनेन द्वारेण शब्दप्रवृत्तिनिमित्तमाचिख्यासन्नुपन्यासं करोति'। [2] अर्थात्, यहां शब्दों के आकरण का अर्थ है शब्दप्रयोग के निमित्त को ठीक पहचानकर उसकी व्याख्या करना। कहां कौन-सा शब्द क्यों प्रयुक्त हुआ है? और उसका अर्थ-विशेष उसमें किन नियमों से स्थित है? - इन सब प्रश्नों का उत्तर देना व्याकरण का ही कार्य है।

व्याकरण की सही परिभाषा की खोज में 'महाभाष्य' में कई विप्रति-पत्तियां उठाई गई हैं। 'सूत्र ही व्याकरण है' (सूत्रं व्याकरणम्) [3] की मान्यता में यह स्पष्ट करने के बाद, कि 'व्याख्यान' के बिना 'सूत्र' या 'नियम' की महत्ता नहीं रह जाती, पतंजलि 'व्याख्यान' का स्वरूप बताते हैं। 'स्मृति, उदाहरण, प्रत्युदाहरण, और व्याक्याध्याहार (प्रसंग)' का समुदित या सम्बद्ध-कथित रूप ही 'व्याख्यान' कहलाता है।' [4] तब वे एक नई मान्यता पर विचार करते हैं: 'एवं तर्हि लक्ष्यलक्षणे व्याकरण।' [5] भर्तृहरि यहां 'बिल्व' का उदाहरण देकर कहते हैं। 'एतत् प्रतिपत्तव्यम्। यथा अन्यो बिल्वशब्दो वनस्पतिमाह, अन्य 'एव फलम्। नाप्यपृशब्दवत् एकाशब्दनिमित्तत्वात्। नाप्यक्षवत् कियासामान्यात्। नाप्येकशेषाश्रयणम्। एवं हि कल्पयमाने सर्व: शब्दोऽप्येवं भाष्यमनुघटते। यल्लक्ष्यमाणमन्यश्चेल्लक्ष्यमाह अन्यो लक्षणमन्य: समुदायम्। किमुच्यते समुदायेषु च शब्द: प्रवृत्ति इति। तस्माद् यथैव संघमण्डलसेनावनमित्येते शब्दा: समुदाया-भिधायिनो नावयवाभिधायिन:, एवं व्याकरणशब्दोऽपि समुदायाभिधायीति'। [6] अर्थात्, जिस तरह बिल्व शब्द वनस्पति और फल की सूचना वस्तुत: दो शब्दरूपों द्वारा देता है, उसी प्रकार 'व्याकरण' शब्द भी 'सूत्र' और 'उदाहरण' के विषय में पृथक्-पृथक् दो शब्दों के रूप में प्रयुक्त समझा जाना चाहिए। पर बहुत से शब्द, 'अवयव' का बोध न कराकर, समुदाय का बोध कराते हैं। संघ, मण्डल, वन, आदि शब्द एक-एक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त न होकर समुदाय के लिए प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार 'व्याकरण' शब्द भी लक्ष्य और लक्षण के सामुदायिक रूप पर लागू माना जाना चाहिए, न कि केवल 'सूत्र' या केवल 'व्याख्या' रूप पर। आगे चलकर वे यह अन्तर भी स्पष्ट करते हैं कि 'व्याकरण' शब्द केवल समुदाय का वाचक ही नहीं है, बल्कि वह अकेले 'सूत्र' या अकेली 'व्याख्या' पर भी लागू हो सकता है। परन्तु, इस पर भी, भर्तृहरि की अपनी धारणा इसी प्रकरण के निम्न वक्तव्य से सिद्ध होती है।

'सूत्रादेव ह्यभिव्यक्ताऽर्थाच्छब्दप्रवृत्तिरिति। यदेतदुदाहरणादीनामुपा-दानमेतन्नार्थतन्त्राणां भाष्यस्थानां ब्रूयात्, शब्दान्तरंगं प्रतिपद्यते इति। किं तर्हि? अनभिव्यक्तं सूत्रं अभिव्यंजयेदिति'। [7]

अर्थात्, अभिव्यक्त अर्थवाले सूत्र से ही शब्दप्रवृत्ति का ज्ञान सम्भव हो पाता है। 'उदाहरण' आदि का ग्रहण किसी शब्दान्तर या शब्दान्तरंग को पाने के लिए नहीं होता। बल्कि उनका मुख्य प्रयोजन है, नियम या 'सूत्र' की अस्प्ष्टता दूर करके, उसके कार्य को स्पष्ट करना। अत: जब भर्तृहरि व्याकरण को 'लक्षण-शास्त्र' कहते हैं, तब भी उनका अभिप्राय 'लक्ष्य और लक्षण' के समन्वित रूप से ही होती है। 'वाक्यपदीय' में उन्होंने लिखा है, 'जिस प्रकार शरीर औश्र बुद्धिसम्बन्धी मलों की शुद्धि चिकित्सा एवं अध्यात्मक शास्त्र से होती है, वाक् सम्बन्धी मलों की विशुद्धि उसी प्रकार 'लक्षण शास्त्र' होती है'। [8]

संस्कार

इस शुद्धि को ही 'संस्कार' कहते हैं। 'व्याकरण' शब्दों की 'शुद्धता' का निर्णय ही नहीं करता, बल्कि सामान्य परम्परा का निर्देश करके, लक्षण के रूप में, हमें वह कसौटी भी प्रदान करता है, जिसके आधार पर हमें शब्दों की शुद्धता-अशुद्धता का ज्ञान सम्भव होता है। इस कसौटी पर 'शुद्ध' न ठहरने पर ही किसी शब्द को हम 'अपभ्रंश' या 'अपशब्द' कह देते हैं। [9] इस प्रकार शुद्धाशुद्ध का ज्ञान करके शुद्ध शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए जैसा कि महाभाष्य में ''एक शब्द: सम्यक् ज्ञात:....

परन्तु, प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या ये लक्षण केवल रूपमात्र से ही निश्चित किए जाते हैं, या इनका कुछ सम्बन्ध भावतत्त्व से भी होता है? 'अश्व' में संज्ञा भी है और किया भी। 'अप्' का अर्थ समुद्र भी है और बिन्दु भी। 'गत:' और 'गतम्' में लिंगभेद है, स्थिति भेद भी, और वाच्य भेद भी। यह सब 'भावतत्त्व' को बिना जाने निर्णीत नहीं हो सकता। इसीलिए भर्तृहरि स्पष्ट कहते हैं कि व्याकरण रूपी स्मृति का विधान, भावतत्त्व को जानकर ही, चिन्हों की पहचान द्वारा सम्भव होता है:

'भावतत्त्वं तु विज्ञाय लिंगेभ्यो विहिता स्मृति: ।। वा. 1.146।।

यहां 'लिंग' शब्द 'लक्षण' का ही अर्थवाची है।

निष्कर्ष

इस प्रकार भर्तृहरि जिसे एक स्थान पर 'लक्षणशास्त्र' कहते हैं, उसे ही अन्यत्र वे 'भाव पर आधारित' लक्षणों के परिज्ञान से उद्भूत शास्त्र मानते हैं। उनकी दृष्टि में 'नियमों' का महत्त्व तब तक नहीं है, जब तक वे, शब्द की आकृति के साथ-साथ, भावतत्त्व के आधार पर निश्चित न किए गए हों। [10]

यहां यह कहना उचित होगा कि यह लक्षण 'व्याकरण' को 'एक देशी' से हटाकर 'स्वदेशी' बना देता है। रूपात्मक समतामात्र होने पर ही हम किसी शब्द को 'संज्ञा' मान सकते हैं। तब 'भावतत्त्व' के आधार पर उसे हम 'क्रिया' ही कहेंगे। इसी आधार पर हम चीनी भाषा आदि में, रूप विकृति न होने पर भी, संज्ञा-किया अथवा सत्त्व-असत्त्व आदि में भेद कर सकेंगे। यही है वास्तव में शब्द का 'प्रवृत्ति-निमित्त' अभिप्राय।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. म. त्रि. 1.1.1
2. म. त्रि 1.1.1
3. 'सूत्रं व्याकरणम्' म. 1.1.1
4. 'स्मृत्युदाहरण.', म. 1.1.1
5. मा. 1.1.1
6. म. त्रि. 1.1.1
7. म. त्रि. 1.1.1
8. वा. 1. 147
9. वा. 1. 148
10. वा. 1. 144